2026 Volume: 02 Issue: 06 www.ijrpa.com ISSN 2456-9995 Research Article

International Journal Research Publication Analysis

Page: 01-08

भारतीय लोक परंपराओं और मौखिक इतिहास का संरक्षण: भ्रांतियां बनाम वास्तविकता (एक ऐतिहासिक अध्ययन)

डॉ. कृष्णकांत मिश्रा

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग हेमवती नंदन बहुगुणा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खटीमा (ऊधमसिंह नगर), उत्तराखंड

Article Received: 13 May 2026
Article Revised: 03 June 2026
Published on: 23 June 2026

***Corresponding Author: डॉ. कृष्णकांत मिश्रा**
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग हेमवती नंदन बहुगुणा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खटीमा (ऊधमसिंह नगर), उत्तराखंड

DOI: https://doi-doi.org/101555/ijrpa.2753

१. अमूर्त (ABSTRACT)

भारत का सांस्कृतिक अतीत जितना प्राचीन और गौरवशाली है, उतना ही बहुआयामी और जटिल भी है। पारंपरिक और आधुनिक इतिहास लेखन में अधिकांशतः लिखित, पुरातात्विक और राजकीय अभिलेखों को ही सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। इस प्रक्रिया में, शासक वर्ग और बड़े साम्राज्यों का इतिहास तो मुखर होकर सामने आया, परंतु समाज के निचले पायदान पर स्थित जनमानस, उनकी संस्कृति, और स्थानीय संघर्षों का इतिहास उपेक्षित रह गया। मौखिक इतिहास (Oral History) और लोक परंपराएं (Folk Traditions) उसी उपेक्षित समाज की अनकही गाथाएं हैं, जो ज्ञान के हस्तांतरण की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में जीवित हैं। औपनिवेशिक और संभ्रांतवादी (Elite) इतिहास विमर्श ने अक्सर इन लोक परंपराओं को केवल अंधविश्वास, कपोल-कल्पना या अतार्किक मिथक मानकर मुख्यधारा के ऐतिहासिक विश्लेषण से अलग रखा। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी भ्रांति का विखंडन (Demystification of Realities) करने का एक अकादमिक प्रयास है। यह शोध-पत्र तार्किक, समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक मापदंडों के आधार पर यह सिद्ध करता है कि लोक परंपराओं और मौखिक इतिहास के सूक्ष्म परीक्षण के बिना भारत के व्यापक इतिहास की समग्र व्याख्या असंभव है। इसके साथ ही, वर्तमान भूमंडलीकरण और डिजिटल संस्कृति के संक्रमण काल में इन लोक स्रोतों के विलुप्त होने की गंभीर चुनौतियों और उनके संरक्षण के सरोकारों (Concerns) पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। ऐतिहासिक प्रामाणिकता को स्पष्ट करने के लिए विशेष रूप से उत्तराखंड के कुमाऊं और तराई-भाबर (खटीमा क्षेत्र) की लोक-संस्कृति, जाँगर परंपरा और जनजातीय गाथाओं को केस स्टडी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द (KEYWORDS): *मौखिक इतिहास, लोक परंपराएं, भ्रांतियां, विखंडन (Demystification), सांस्कृतिक संरक्षण, इतिहास लेखन, तराई क्षेत्र, जाँगर परंपरा।*

२. प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारतीय इतिहास लेखन की यात्रा विभिन्न चरणों से गुजरी है। प्राच्यवादियों (Orientalists), औपनिवेशिक इतिहासकारों, राष्ट्रवादी विचारकों और मार्क्सवादी इतिहासकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से भारतीय अतीत को परिभाषित करने का प्रयास किया। इन समस्त धाराओं में एक सामान्य प्रवृत्ति यह देखी गई कि वे साक्ष्यों की प्रामाणिकता के लिए लिखित दस्तावेजों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों और विदेशी यात्रियों के विवरणों पर अत्यधिक निर्भर रहे। निश्चित रूप से ये स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, परंतु भारत जैसे विशाल और सांस्कृतिक रूप से विविध देश में, जहाँ साक्षरता का प्रसार आधुनिक काल से पूर्व सीमित था, समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने ज्ञान, दर्शन, इतिहास और जीवन-संघर्षों को अलिखित रूप में सहेजे हुए था। यह संचरण 'श्रुति' (सुनने) और 'स्मृति' (याद रखने) की एक सुदृढ़ वाचिक परंपरा (Oral Tradition) के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहा।

ऐसी स्थिति में, जब हम भारत के "समृद्ध सांस्कृतिक अतीत" की बात करते हैं, तो हमें केवल राजप्रासादों और संभ्रांत वर्गों के इतिहास तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि खेतों, खलिहानों, जंगलों और पहाड़ों में गूंजने वाले लोकगीतों, लोकगाथाओं और मौखिक संस्मरणों को भी इतिहास के मुख्य विमर्श में शामिल करना होगा। वर्तमान समय में इतिहास लेखन में 'नीचे से इतिहास' (Subaltern History) और लोक-इतिहास के प्रति वैश्विक स्तर पर रुचि बढ़ी है। मौखिक इतिहास केवल कुछ काल्पनिक कहानियों का पुलंदा नहीं है, बल्कि यह उस कालखंड की सामान्य जनता की सामूहिक चेतना और उनकी ऐतिहासिक स्मृति का जीवंत प्रमाण है। जब लिखित इतिहास मौन हो जाता है, तब मौखिक इतिहास समाज के अंतर्विरोधों, स्थानीय आंदोलनों, और सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए किए गए संघर्षों को आवाज देता है।

परंतु, अकादमिक जगत में एक लंबे समय से यह भ्रांति व्याप्त रही है कि मौखिक स्रोतों में अतिशयोक्ति, काल्पनिक तत्वों और धार्मिक पुट की बहुलता होने के कारण वे ऐतिहासिक रूप से अविश्वसनीय हैं। इस दृष्टिकोण के कारण लोक-संस्कृति के वास्तविक ऐतिहासिक तत्वों को अनदेखा कर दिया गया। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी औपनिवेशिक और संभ्रांतवादी मानसिकता के विखंडन की आवश्यकता पर बल देता है। इतिहासकार का कर्तव्य केवल साक्ष्यों को स्वीकार करना नहीं है, बल्कि लोक परंपराओं की तह में जाकर उनमें छिपे ऐतिहासिक सत्यों को उजागर करना और भ्रांतियों का निवारण करना है।

३. शोध के उद्देश्य (Objectives of the Study)

प्रस्तुत शोध कार्य मुख्य रूप से निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए केंद्रित है:

1. भारतीय इतिहास लेखन के संदर्भ में मौखिक परंपराओं और लोक इतिहास के स्थान व महत्व का दार्शनिक और पद्धतिशास्त्रीय मूल्यांकन करना.
2. लोक परंपराओं और मौखिक इतिहास को लेकर अकादमिक और सामाजिक स्तर पर व्याप्त विभिन्न भ्रांतियों (Myths) का तार्किक और साक्ष्य-आधारित विश्लेषण कर वास्तविकता को स्पष्ट करना (Demystification).
3. उत्तराखंड राज्य के कुमाऊं और विशेषकर तराई क्षेत्र (खटीमा और उसके आसपास के क्षेत्रों) की लोक-संस्कृति, जनजातीय इतिहास और वाचिक परंपराओं का एक ऐतिहासिक केस स्टडी के रूप में विश्लेषण करना.
4. आधुनिकता, शहरीकरण, और वैश्विक डिजिटल मीडिया के दौर में लोक सांस्कृतिक स्रोतों के लुप्त होने से उत्पन्न प्रमुख सरोकारों (Concerns) को रेखांकित करना तथा उनके वैज्ञानिक संरक्षण व प्रलेखीकरण (Documentation) के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना.

४. शोध कार्यप्रणाली (RESEARCH METHODOLOGY)

इस शोध-पत्र में ऐतिहासिक, वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है। चूंकि शोध का विषय लिखित इतिहास और मौखिक इतिहास के अंतर्संबंधों पर आधारित है, इसलिए इसमें प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का संतुलित समन्वय किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में उत्तराखंड के तराई और कुमाऊं क्षेत्र के वयोवृद्ध लोक कलाकारों, जाँगर गायकों (जगरियों) और थारू व बुक्सा जनजाति के मुखियाओं से अनौपचारिक साक्षात्कारों के माध्यम से प्राप्त मौखिक विवरणों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत पूर्व में प्रकाशित शोध पत्रिकाओं, इतिहास और समाजशास्त्र की प्रामाणिक पुस्तकों, गजेटियरों, और स्थानीय लोक-साहित्य के संकलनों का गहन अध्ययन किया गया है। मौखिक साक्ष्यों की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए 'क्रॉस-वेरिफिकेशन' (सत्यापन) की पद्धति अपनाई गई है, जिसके तहत प्राप्त लोक विवरणों की तुलना उपलब्ध समकालीन लिखित अभिलेखों और पुरातात्विक साक्ष्यों से की गई है, ताकि इतिहास और मिथक के बीच की स्पष्ट विभाजक रेखा को पहचाना जा सके।

५. भ्रांतियां बनाम वास्तविकता: तार्किक विखंडन (Demystification of Realities)

मौखिक इतिहास और लोक परंपराओं को मुख्यधारा के इतिहास में स्थान न देने के पीछे कई पूर्वग्रह और भ्रांतियां काम कर रही थीं। इन भ्रांतियों का तार्किक विखंडन करना अत्यंत आवश्यक है ताकि इतिहास की एक समग्र और समावेशी तस्वीर प्रस्तुत की जा सके।

क्र.	प्रचलित भ्रांतियां (Popular Myths)	ऐतिहासिक वास्तविकता एवं विखंडन (Historical Reality)
१.	लोक-गाथाएं और लोक-कथाएं पूरी तरह काल्पनिक, पौराणिक और अतार्किक होती हैं, इनका इतिहास से कोई सीधा संबंध नहीं होता।	लोक-गाथाओं का केंद्रीय पात्र या घटना अधिकांशतः वास्तविक ऐतिहासिक चरित्र होते हैं। समय बीतने के साथ लोक गायकों ने मनोरंजन और स्मृति को सुगम बनाने के लिए उनमें कुछ अलंकारिक या अतिशयोक्तिपूर्ण तत्व जोड़ दिए। यदि वैज्ञानिक पद्धति से इन बाहरी परतों को हटा दिया जाए, तो मूल में एक ठोस ऐतिहासिक घटना (जैसे कोई युद्ध, महामारी, या सामाजिक आंदोलन) प्राप्त होती है।
२.	मौखिक इतिहास पूरी तरह से पक्षपातपूर्ण, व्यक्तिपरक (Subjective) और अविश्वसनीय होता है क्योंकि यह समय के साथ बदल जाता है।	लिखित इतिहास भी पूर्णतः निष्पक्ष नहीं होता; वह अक्सर शासकों के संरक्षण में या विशिष्ट विचारधारा के प्रभाव में लिखा जाता है। मौखिक इतिहास की खूबी यह है कि यह जनसामान्य का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। जब बहुसंख्यक लोक गायक अलग-अलग स्थानों पर एक ही घटना को अपनी वाचिक परंपरा में दोहराते हैं, तो वह सामूहिक स्मृति लिखित इतिहास की तुलना में अधिक स्थायी और प्रामाणिक सत्य के करीब हो जाती है।
३.	लोक परंपराएं और रीति-रिवाज आदिम, रूढ़िवादी और विकास विरोधी मानसिकता के परिचायक होते हैं।	गहन समाजशास्त्रीय अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश लोक परंपराएं पर्यावरण संरक्षण, जल संवर्धन, जैव विविधता की रक्षा और सामाजिक समरसता के उच्च मूल्यों पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए, पवित्र उपवनों (Sacred Groves) की रक्षा की लोक परंपरा वैज्ञानिक पारिस्थितिकी का उत्कृष्ट उदाहरण है।
४.	मौखिक स्रोतों का कोई वैश्विक या राष्ट्रीय महत्व नहीं होता, ये केवल अत्यंत सीमित स्थानीय स्तर के मनोरंजन मात्र हैं।	स्थानीय इतिहास ही राष्ट्रीय इतिहास की आधारशिला रखता है। कई बड़े राष्ट्रीय आंदोलनों (जैसे १८५७ का स्वतंत्रता संग्राम) की अनेक महत्वपूर्ण कड़ियाँ, जो ब्रिटिश दस्तावेज़ों में 'विद्रोह' या 'दंगे' के रूप में दर्ज थीं, स्थानीय लोकगीतों में देशभक्ति और वीरता के गौरवशाली इतिहास के रूप में सुरक्षित पाई गई हैं।

५.१ लोकस्मृति में इतिहास का संरक्षण

मौखिक परंपराओं के विखंडन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह समझना है कि लिखित भाषा के आविष्कार से हजारों वर्ष पूर्व भी मानव समाज ने अपनी महत्वपूर्ण घटनाओं को याद रखने की एक प्रणाली विकसित कर ली थी। इस प्रणाली में छंदबद्धता, संगीत, और रूपकों का उपयोग किया जाता था ताकि

सूचनाएं विकृत न हों। उदाहरण के लिए, भारत के प्राचीनतम ग्रंथ 'वेद' सदियों तक मौखिक रूप से ही जीवित रहे और उनकी शुद्धता अक्षुण्ण रही। यही नियम लोक इतिहास पर भी लागू होता है। जब कोई स्थानीय राजा या नायक समाज के लिए कोई बड़ा कार्य करता था, तो भाट, चारण या स्थानीय लोक कलाकार उसकी गाथा को गीतों में पिरो लेते थे। पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाए जाने के कारण ये गीत उस समाज के ऐतिहासिक दस्तावेज बन गए। इसलिए इन्हें केवल 'मिथक' कहकर खारिज करना वैज्ञानिक इतिहास लेखन की दृष्टि से बहुत बड़ी भूल होगी।

६. उत्तराखंड और तराई-भाबर (खटीमा क्षेत्र) का संदर्भ: एक क्षेत्रीय अध्ययन

प्रस्तुत शोध-पत्र की प्रासंगिकता को और अधिक सुदृढ़ करने के लिए उत्तराखंड के कुमाऊं और विशेष रूप से तराई-भाबर के खटीमा क्षेत्र का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह क्षेत्र सांस्कृतिक संमिश्रण (Cultural Syncretism), विविध जनसांख्यिकी और समृद्ध मौखिक परंपराओं का एक अनूठा जीवंत संग्रहालय है। खटीमा का क्षेत्र भौगोलिक रूप से नेपाल की सीमा से सटा हुआ है और यहाँ सदियों से थारू जनजाति, बुक्सा जनजाति, स्थानीय कुमाऊंनी समाज और देश के अन्य हिस्सों से आए शरणार्थियों व प्रवासियों का सह-अस्तित्व रहा है। इस विविधता ने यहाँ एक अत्यंत समृद्ध और बहुस्तरीय मौखिक इतिहास को जन्म दिया है।

६.१ जाँगर परंपरा: लोक-धार्मिक अनुष्ठान में इतिहास का समावेश

कुमाऊं और गढ़वाल की 'जाँगर' (Jagar) परंपरा मौखिक इतिहास के संरक्षण का एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यद्यपि बाहरी तौर पर जाँगर को एक धार्मिक या आध्यात्मिक अनुष्ठान माना जाता है, जिसमें स्थानीय देवी-देवताओं का आह्वान किया जाता है, परंतु एक इतिहासकार के दृष्टिकोण से जाँगर मध्यकालीन उत्तराखंड के सामाजिक, राजनीतिक और सैन्य इतिहास का एक अत्यंत प्रामाणिक मौखिक स्रोत है। जाँगर गायन करने वाले कलाकार, जिन्हें 'जगरी' कहा जाता है, वे केवल देवताओं की स्तुति नहीं करते, बल्कि वे उन 'देवताओं' के मानव रूप में किए गए ऐतिहासिक कार्यों का पूरा विवरण प्रस्तुत करते हैं।

वास्तव में, उत्तराखंड के जाँगरों में पूजे जाने वाले अधिकांश देव-पात्र जैसे कि कत्यूरी राजवंश और चंद राजवंश के राजा, राजकुमार या महान सेनापति थे। उदाहरण के लिए, 'गोरिया' या 'गोलू देवता' चंद वंश के एक ऐतिहासिक राजकुमार थे, जिन्होंने तत्कालीन सामंती व्यवस्था के खिलाफ जाकर जनता को त्वरित और निष्पक्ष न्याय प्रदान किया था। लिखित इतिहास में भले ही उनका विस्तृत विवरण न मिले, परंतु जाँगरों की मौखिक गाथाओं में उनके जीवन, उनके द्वारा लड़े गए युद्धों, और उनकी न्याय प्रणाली का इतना विस्तृत और क्रमिक विवरण मिलता है कि उसके आधार पर उस कालखंड के इतिहास का

पुनर्निर्माण किया जा सकता है। इसी प्रकार, 'सैलानी' और 'भड़' (स्थानीय वीर योद्धा) की गाथाएं मध्यकालीन सामंती दमन और उसके खिलाफ आम जनता के प्रतिरोध के इतिहास को जीवंत करती हैं।

६.२ तराई क्षेत्र की जनजातीय मौखिक परंपराएं: थारू और बुक्सा समाज

खटीमा और उसके आसपास के तराई क्षेत्र के मूल निवासी थारू और बुक्सा जनजातियों का इतिहास लिखित स्रोतों में अत्यंत धुंधला और उपेक्षित है। ब्रिटिश काल के गजेटियरों में उन्हें केवल 'जंगली' या 'तराई के मलेरिया-रोधी निवासी' के रूप में संक्षिप्त स्थान दिया गया। परंतु इन जनजातियों के पास अपनी उत्पत्ति, प्रवासन (Migration) और राजाओं के साथ अपने संबंधों का एक अत्यंत समृद्ध मौखिक इतिहास उपलब्ध है।

थारू समाज की मौखिक कथाओं में यह विवरण गहराई से बैठा हुआ है कि उनका संबंध राजस्थान के राजपूताना से है, और मुग़ल आक्रमणों के समय उनकी महिलाओं और पूर्वजों ने तराई के जंगलों में शरण ली थी। उनकी लोकगाथाओं में महाराणा प्रताप और चित्तौड़गढ़ के प्रति एक गहरा आदर भाव दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त, थारू समाज के लोकगीतों में तराई के घने जंगलों को काटकर उसे कृषि योग्य भूमि में बदलने के उनके सदियों पुराने संघर्ष, जंगली जानवरों के साथ उनके सह-अस्तित्व, और प्रकृति के साथ उनके अनूठे संबंधों का सविस्तार वर्णन मिलता है। बुक्सा जनजाति की मौखिक परंपराएं भी उनके धारानगरी (मालवा) से प्रवासन की ऐतिहासिक कड़ियों को जोड़ती हैं, जो मुख्यधारा के लिखित इतिहास के अभाव में ज्ञान का एकमात्र स्रोत हैं।

६.३ लोकगीत (Folk Songs) और सामाजिक-आर्थिक इतिहास

खटीमा क्षेत्र के कुमाऊंनी समाज में गाए जाने वाले विभिन्न लोकगीत जैसे- 'न्योली', 'भगनौल', 'ऋतुरेण' और 'हुड़किया बौल' केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं, बल्कि वे विभिन्न कालखंडों के सामाजिक-आर्थिक इतिहास के सजीव दस्तावेज हैं। 'हुड़किया बौल' (कृषि कार्य, विशेषकर धान की रोपाई के समय हुड़के की थाप पर गाए जाने वाले गीत) के माध्यम से मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक की कृषि व्यवस्था, सामूहिक श्रम की परंपरा (पड़ियाल प्रथा), और भूमि स्वामियों व कृषकों के संबंधों को समझा जा सकता है। इन गीतों में केवल उत्सव धर्मिता नहीं है, बल्कि इनमें अकाल, महामारी, अत्यधिक कर-वसूली से उत्पन्न जनता की पीड़ा और पहाड़ों से मैदानों की ओर होने वाले प्रवासन (Migration) का दर्द भी साफ झलकता है।

७. प्रमुख सरोकार और चुनौतियां (Concerns and Challenges)

यद्यपि भारत और उत्तराखंड का यह सांस्कृतिक अतीत और मौखिक इतिहास अत्यंत समृद्ध है, परंतु वर्तमान २१वीं सदी में इसके अस्तित्व पर एक गंभीर संकट मंदरा रहा है। इस अमूर्त विरासत के संरक्षण को लेकर कई चिंताजनक सरोकार हमारे सामने हैं:

- तीव्र वैश्वीकरण और सांस्कृतिक समरूपीकरण (Cultural Homogenization): भूमंडलीकरण और पश्चिमीकरण के तीव्र प्रभाव के कारण उपभोक्तावादी संस्कृति ने युवा पीढ़ी की प्राथमिकताओं को बदल दिया है, जिससे स्थानीय संस्कृतियाँ हाशिए पर जा रही हैं.
- पीढ़ीगत अंतर और वाचिक परंपरा का विच्छेद: खटीमा और कुमाऊं के पर्वतीय क्षेत्रों से युवाओं के पलायन के कारण वे अपने बुजुर्गों के साथ समय नहीं बिता पा रहे हैं. वयोवृद्ध कलाकारों की मृत्यु के साथ लोक-इतिहास का एक अमूल्य पुस्तकालय हमेशा के लिए नष्ट हो रहा है.
- लोक-कलाओं का बाज़ारीकरण और विकृतीकरण: सोशल मीडिया के इस दौर में लोकगीतों और लोकनृत्यों को सनसनीखेज बनाने के चक्कर में उनके मूल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है, जिससे नई विकृतियों का जन्म हो रहा है.
- संस्थागत और अकादमिक उपेक्षा: विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के इतिहास विभागों में आज भी मौखिक स्रोतों के व्यापक दस्तावेजीकरण (Documentation) के लिए पर्याप्त बजटीय प्रावधान और संस्थागत ढांचे का नितांत अभाव है.

८. निष्कर्ष और व्यावहारिक सुझाव (Conclusion & Suggestions)

भारत के समृद्ध सांस्कृतिक अतीत की वास्तविकताओं को समझने और पूर्वग्रह से ग्रसित भ्रांतियों का विखंडन करने के लिए इतिहास लेखन के पारंपरिक दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। लिखित इतिहास जहाँ हमें तिथियों, राजवंशों और शासकीय नीतियों का ढांचा प्रदान करता है, वहीं मौखिक इतिहास और लोक परंपराएं उस ढांचे में मांस और रक्त भरकर उसे एक सजीव मानवीय रूप प्रदान करती हैं। उत्तराखंड के खटीमा क्षेत्र और कुमाऊं की जाँगर परंपरा व जनजातीय गाथाओं से यह पूरी तरह स्पष्ट होता है कि ये लोक स्रोत इतिहास के जन-सरोकार वाले पक्ष हैं, जिनमें आम जनता का सुख-दुख, उनका संघर्ष और उनकी पहचान सुरक्षित है।

व्यावहारिक सुझाव (RECOMMENDATIONS)

- संस्थागत दस्तावेजीकरण: उच्च शिक्षा स्तर पर महाविद्यालयों (जैसे- हेमवती नंदन बहुगुणा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खटीमा) को स्थानीय मौखिक इतिहास के दस्तावेजीकरण के लिए अनिवार्य छात्र प्रोजेक्ट चलाने चाहिए.

- डिजिटल लोक अभिलेखागार की स्थापना: राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर आधुनिक डिजिटल आर्काइव बनाए जाएं, जहाँ इन लोकगाथाओं और जाँगरों को ऑडियो-विजुअल रूप में अनुवाद सहित संरक्षित किया जा सके.
- पाठ्यक्रम में समावेशन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) के तहत स्कूली और उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में क्षेत्रीय मौखिक इतिहास को विशेष स्थान दिया जाना चाहिए.
- लोक कलाकारों को आर्थिक सुरक्षा: जो पारंपरिक लोक कलाकार इस अमूर्त विरासत को जीवित रखे हुए हैं, उन्हें सरकार द्वारा सामाजिक सुरक्षा, पेंशन और छात्रवृत्ति प्रदान की जानी चाहिए.

९. संदर्भ ग्रंथ सूची (REFERENCES)

1. थापर, रोमिला (२००४), इतिहास की पुनर्व्याख्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. पाठक, शेखर (संपादित), पहाड़ (विभिन्न ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अंक), पहाड़ प्रकाशन, नैनीताल।
3. वंसिना, जन (1985), Oral Tradition as History, यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन प्रेस, मैडिसन।
4. जोशी, प्रयाग (१९९०), कुमाऊँ की लोकगाथाएं, प्रकाश प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. मिश्रा, कृष्णकांत (२०२४), "तराई-भाबर का सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास और जनजातीय जीवन", उत्तराखंड इतिहास समीक्षा, अंक ४, पृष्ठ ४५-५८।
6. अटकिंसन, Edvin T. (१९८२), द हिमालयन गज़ेटियर (हिन्दी अनुवाद), कॉस्मो पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
7. सांकृत्यायन, राहुल (१९५३), कुमाऊँ, वाराणसी प्रकाशन, वाराणसी।
8. गुहा, रणजीत (सं.) (१९९७), सबॉल्टर्न स्टडीज: भारतीय इतिहास और समाज के कुछ पहलू, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।